शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 03 अंक– 12 अक्टूबर - दिसंबर - 2025 Impact factor– 03

नाट्यशास्त्र की अवधारणा एवं आधुनिक थिएटर कला

डॉ. एकता गोस्वामी
हिन्दी विभाग, उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान, भोपाल

शोध सारांश- भारतीय नाट्य परंपरा का मूलाधार नाट्यशास्त्र है, जिसकी रचना आचार्य भरतमुनि ने की। यह ग्रंथ न केवल नाटक की अवधारणा पर दृष्टिपात करता है बल्कि भारतीय सौंदर्यशास्त्र और राष्ट्रिय एकता की भी आधारशिला रखता है। आधुनिक नाट्य कला यद्दपि पाश्चात्य प्रभावों, तकनीकी विकास और सामाजिक परिवर्तनों से प्रभावित है, फिर भी नाट्य शास्त्रीय सिद्धान्त इसके अंतर में विदद्यमान हैं। यह शोध पत्र नाट्यशास्त्र अवधारणा, आधुनिक नाट्य कला के साथ उसके सम्बन्ध और प्रासंगिकता का विश्लेषण करता है।

बीज शब्द- नाट्य शास्त्र, आधुनिक नाट्य कला, भरतमुनी, प्रसाद

भूमिका- नाटक मानव जीवन को प्रतिबिम्बित करने वाला सशक्त माध्यम है। भारतीय संस्कृति में नाटक को केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष- चारों पुरुषार्थों का प्रदाता माना गया है। नाट्य शास्त्र को पंचम वेद माना गया है तथा यह समाज के सभी वर्गों के लिए समान रूप से उपयोगी है। आधुनिक काल में नाटक के रूप, शिल्प और प्रस्तुति में व्यापक परिवर्तन हुए हैं परंतु उसका मूल उद्देश्य 'मानव समाज की संप्रेषणीय अभिव्यक्ति' आज भी अपरिवर्तित है।

"न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन यन्न दृश्यते"॥

नाट्यशास्त्र में भरत मुनि कहते हैं ऐसा कोई ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, योग, कर्म नहीं है जो नाट्यशास्त्र में समाहित ना हो। पंचम वेद के नाम से प्रसिद्ध नाट्यशास्त्र में नाटक के लिए आवश्यक बिंदुओं पर जो चर्चा की गई है उससे नाटक अपने आप में वृहत हो जाता है। लोक में व्याप्त समस्त विषयों को समाविष्ट करते हुए नाटक समाज में लोकमंगल की भावना को समादृत करता है। इसलिए समस्त कलाओं में इसकी ग्राह्यता सर्वाधिक है। काव्य के दो रूप माने गए हैं- दृश्य काव्य और श्रव्य काव्य। इनमें भी दृश्य काव्य महत्वपूर्ण है क्योंकि इसे देखा व सुना जा सकता है। दृश्य काव्य की संज्ञा रूपक है तथा रूपकों के 10 भेदों (नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, व्यायोग, समवककार, डिम, विथि, अंक, इहामृग) में भी नाटक को सर्वोच्च शिखर पर रखा गया है। "सर्वकला संयोगान्नाट्यस्य लोक प्रियतत्वम सिद्धम"।
भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र में लिखा है:-

"नाना भावो संपन्नं नानावस्थान्तरात्मकम्।
लोक वृत्तनुकरणम् नाट्यमेतन्मया कृतम"॥

अर्थात अनेक प्रकार के भावों से संपन्न, अनेक प्रकार की अवस्थाओं से सम्मिश्रित तथा लोक वृत्त का अनुकरण करने वाला यह नाटक मैंने रचा है।नाटक के बारे में कहा गया है- " अवस्थानुकृतिर्नाट्यम" अर्थात समाज में घटने वाली घटनाओं,उनके चरित्र और अवस्थाओं का अनुकरण नाटक है। नाटक के विषय भूतकाल की घटनाओं से प्रेरित होते हैं एवं वर्तमान परिप्रेक्ष्य में चरित्रों के माध्यम से इसे समाज से जोड़ा जाता है-

"यद द्रव्यम् जीवलोके तु नाना लक्षण लक्षितम।
तस्यानुकृति संस्थानम् नाट्योपकर्णम भवेत"॥

भरत मुनि यहां कहते हैं इस जीव लोक में विभिन्न लक्षणों से लक्षित जो भी द्रव्य हैं उसकी अनुकृति में निर्मित रचना नाट्योपकरण है। इस प्रकार नाट्य उपकरण की बात करते हुए भरत मुनि अनुकृति के संबंध में कहते हैं –

"लोकधर्मी भवेत त्वन्या नाट्यधर्मी तथा परा।
स्वभावो लोकधर्मी तु विभावो नाट्यमेव ही"॥

यह अनुकृति क्रमशः दो प्रकार की हो सकती है- लोक धर्मी और नाट्य धर्मी। लोक धर्मी वस्तु का स्वभाव होगा और विभाव होने पर वही नाट्य बन जाएगा। इस प्रकार निर्माण से लेकर मंचन तक नाट्य केवल लोक से जुड़ा है। लोक से प्रेरित और लोक हित में ही होगा।

वेद तथा अध्यात्म से युक्त होकर तथा शब्द छंद से समन्वित नाट्य लोक सिद्ध तथा लोकात्म होता है। लोकमंगल की अवधारणा को अपने में समाहित करते हुए नाट्य सामाजिक उत्थान की ओर अग्रसर था। नाटक के अर्थ एवं इसके प्रयोजन पर संतुष्टिपरक अध्ययन कर नाट्यशास्त्र की रचना प्रक्रिया पर विचार करें तो इसमें भी संसार कल्याण ही दृष्टिगोचर होता है। जिसका प्रमाण हमें नाट्यशास्त्र में ही मिलता है। नाट्यशास्त्र के पहले अध्याय में ही कथा मिलती है जिसमें भरत मुनि स्वयं का उल्लेख करते हुए लिखते हैं- " भरत मुनि अपनी पूजा समाप्त करके फुर्सत में बैठे थे। उनके शिष्य भी उनके साथ थे।उसी दिन आत्रेय आदि कुछ दूसरे मुनि उनके पास आ पहुंचे। इन मुनियों को नाटक या रंगमंच के बारे में कोई खास जानकारी नहीं थी वे जिज्ञासावश भरतमुनि के पास आ पहुंचे थे। इन मुनियों ने भरत से नाटक को लेकर पांच सवाल पूछे- 1 हे ब्राह्मण नाट्य वेद कैसे उत्पन्न हुआ, 2 यह किसके लिए उत्पन्न हुआ, 3 इसके कितने अंग हैं, 4 इसका प्रमाण क्या है, 5 इसका प्रयोग कैसे किया जाता है"। ऊपर से भोले से दिखने वाले इन सूक्ष्म प्रश्नों का उत्तर भी अत्यंत सूक्ष्म है। भरत मुनि यह बात समझ गए तथा इन प्रश्नों के उत्तरों की खोज में नाट्यशास्त्र जैसी 36 अध्यायों की पुस्तक का निर्माण हुआ।

डॉ राधावल्लभ त्रिपाठी यहां लिखते हैं " पहला सवाल कैसे उत्पन्न हुआ के लिए शब्द है कथम उत्पन्न:। संस्कृत में कथम् के कैसे और क्यों यह दोनों अर्थ प्रचलित है। इसलिए भरत मुनि को लगा कि मुनि लोग नाट्य उत्पत्ति की प्रक्रिया ही नहीं पूछ रहे हैं,वह नाटक का प्रयोजन भी पूछ रहे हैं. फिर नाटय उत्पत्ति की प्रक्रिया भी दो तरह से बताई जा सकती है।आदिम काल में किस तरह नाट्य सामने आया और दूसरा नाट्य हर देश, हर काल में किस तरह रचा जाता है। यह बताते हुए उसकी रचना प्रक्रिया का निरूपण भी किया जाए. चौथा प्रश्न नाट्य का प्रमाण क्या है - में भी प्रमाण के दो अर्थ लिए जा सकते हैं मानदंड और माप।" नाट्यशास्त्र की अवधारणा को जानने के लिए इन महत्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर जानना अत्यंत आवश्यक है।

पहला प्रश्न नाट्यशास्त्र या नाट्य की उत्पत्ति के संबंध में भरत मुनि पहले अध्याय में समझाते हैं – ''हे ऋषियों! बहुत पहले की बात है स्वयंभू मन्वंतर समाप्त हो गया था। वैवस्वत मन्वंतर में सतयुग का भी अंत हो चुका था त्रेता युग आ गया था. लोग ग्राम्य धर्म में प्रवत्त हो गए थे और मनमानी करने लगे थे। ईर्ष्या और क्रोध में उनकी मति फिर गई थी। वह सुख और दुख के वश में हो गए थे। इससे इंद्र आदि देवताओं ने पितामह ब्रह्मा के पास जाकर कहा हम ऐसा खिलौना चाहते हैं जो देखा भी जा सके और सुना भी जा सके-

'जग्राह पाठ्यम् ऋग्वेदात् सामेभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान रसानाथर्वणादपि'॥

अतः ब्रह्मा ने चारों वेदों से - ऋग्वेद से पाठ, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस लेकर नाट्य वेद की रचना की। नाट्योत्पत्ति से तात्पर्य नाटक के मंचन अथवा इसके साक्षात्कार से था। यह साक्षात्कार तभी हो सकता था जब मनुष्य समाज में नाटक की

आवश्यकता को महसूस किया जाए और यह आवश्यकता तब महसूस की गई जब सुख-दुख एकमेक हो गए और नाटक के माध्यम से उनकी पहचान की जा सकती थी। तब ब्रह्मा द्वारा नाट्य वेद की रचना के बाद देवताओं ने यह प्रश्न किया कि नाटक का प्रयोग कौन करेगा? ऐसी स्थिति में भरत मुनि और उनके 100 शिष्यों ने नाटक को सीखा तथा इस संबंध में जो अन्य घटनाएं घटी उनका वर्णन नाट्यशास्त्र के चौथे अध्याय में हैं। दूसरे प्रश्न यह नाटक किसके लिए है - के उत्तर में भरत मुनि ने पांचवें अध्याय में नाट्य प्रस्तुति का विस्तार से वर्णन करते हुए लिखा है नाट्य निखिल विश्व से जुड़ जाने के लिए है। रंग दैवत पूजन और पूर्व रंग उसकी तैयारी की सीढ़ियां है। तीसरे प्रश्न नाटक में कितने अंग हैं - इसका उत्तर नाट्यशास्त्र में अनेक प्रकार से मिलता है. नाट्यशास्त्र के छठवें अध्याय में नाटक के 11 तत्व बताते हुए भरत मुनि लिखते हैं रस, भाव, अभिनय, धर्मी, वृत्ति, प्रवृत्ति, सिद्धि, स्वर, आतोद्य, गान और रंगमंच 11 नाट्य के अंग हैं। चौथे प्रश्न के उत्तर में भरत मुनि ने लिखा है-

"लोको वेदस्तथाध्यात्मं प्रमाणम् त्रिविधम् स्मृतम।
वेदाध्यात्म पदार्थेषु प्रायो नाट्य प्रतिष्ठितम्"॥

नाट्य का प्रमाण क्या है? इसके उत्तर में वह कहते हैं लोक वेद (शास्त्र) और अध्यात्म (अभिनेता की अपनी चेतना)। उन्होंने अभिनेता से बार-बार कहा है जो शास्त्र से विदित ना हो सके उसे लोक या अपने आसपास की व्यवहारिक दुनिया से समझने का प्रयास करें और जो लोक और शास्त्र दोनों से विदित ना हो सके उसके लिए अंतिम प्रमाण स्व चेतना ही है। मुनियों के अंतिम प्रश्न नाटक का प्रयोग कैसे होगा - इसका उत्तर तो संपूर्ण नाट्यशास्त्र में समाया हुआ है. भरत मुनि ने अपनी नाट्य दृष्टि से नाटक की सृष्टि करते हुए जीवन की समग्रता और मूल्य बोध को इससे जोड़ा और इस प्रकार रंगमंच का सौंदर्य शास्त्र रचते हुए नाट्यशास्त्र की रचना की।

राष्ट्रीय एकता में नाट्यशास्त्र की भूमिका-

इस देश की राष्ट्रीय एकता के प्रतीक के रूप में भी नाट्य शास्त्र की महत्वपूर्ण भूमिका है। नाट्यशास्त्र के निर्माण के साथ ही भरत मुनि ने समस्त जाति समूहों में एकता स्थापित करने का प्रयास भी किया। 'इस देश के नैतिक धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन के परिचायक और इस महान राष्ट्र की अंतश्चेतना के द्योतक रामायण और महाभारत की भांति भरत का नाट्यशास्त्र भी एक अपूर्व कृति है जिस रूप में रामायण और महाभारत द्वारा इस देश के राष्ट्रीय चरित्र की अभिव्यंजना हुई। नाट्यशास्त्र का दृष्टिकोण यद्यपि उस से कुछ भिन्न है फिर भी इस दृष्टि से उसका महत्वपूर्ण स्थान है कि उसने यहां के जनजीवन और साहित्य को नई चेतन दी'। यदि हम ऐतिहासिक संदर्भ में तत्कालीन परिस्थितियों पर दृष्टिपात करें तो जान पड़ता है कि तत्कालीन वर्ण व्यवस्था ने सामाजिक जीवन में ऊंच-नीच और छोटे-बड़े की दीवार खड़ी कर रखी थी। कर्मों और व्यवसायों के आधार पर वर्गीकृत सामाजिक व्यवस्था को जन्मसिद्ध अधिकार मानने वाले लोगों ने शेष समाज को सर्वथा भिन्न एवं उपेक्षित तथा विस्मित कर दिया था. सर्वाधिक संपन्न एक वर्ग विशेष के निर्बाध प्रभुत्व ने बहुसंख्यक समाज की प्रगति को अवरुद्ध कर दिया था. उनके कठोर प्रतिबंधों एवं एकांगी पक्षपाती व्यवस्था के कारण राष्ट्रीय एकता निरंतर विशृंखलित होती जा रही थी। यह सामाजिक विभेद राष्ट्रीय एकता को निरंतर क्षीण कर रहे थे. यथा इस विभेद को दूर करने के लिए जो प्रयत्न किए गए नाट्यशास्त्र का नाम उनमें अग्रणी है। ब्रह्मा द्वारा चारों वेदों का मंथन कर सर्वजन उपयोगी जिस शास्त्र का निर्माण किया गया उसे पंचम वेद नाम दिया गया। इस पंचम वेद के निर्माण का मुख्य उद्देश्य था- 'वेद केवल द्विजातियों के लिए थे किंतु यह पंचम वेद लोक सामान्य के लिए था'।इसके अध्ययन प्रयोग एवं दर्शन का अधिकार सर्व सामान्य को था यह चारों वेदों से प्रसूत होने के कारण भारतीय मर्यादाओं और आदर्शों के अनुरूप भी था।

'श्रुति-स्मृति-पुराण द्वारा समर्पित इस नाट्य वेद में लोक जीवन की सारी मान्यताएं और परंपराएं समन्वित थी। इसलिए लोक जीवन में उसका आदर सम्मान बड़ा। वह धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष इस- चतुर्वर्ग का प्रदाता तथा लोक मंगल का कारण बना'। नाट्यशास्त्र ने वर्ग विषमताओं और जातीय भेदों को मिटाकर सबको एक साथ बैठने के लिए प्रेरित किया महामुनि भरत ने युग दृष्टा की भांति लोक परंपराओं को शास्त्रीय सूत्र में पिरोकर ब्रह्मा द्वारा सृजित नाट्य वेद को लोकोपयोगी बनाने का कार्य किया।

आधुनिक थिएटर कला-

नाटक एक स्वतंत्र एवं समग्र कला है और अनेक शास्त्रों को अपने में समादृत करता है। इसलिए इसकी शाश्वतता है, नैरंतर्य है। आधुनिक काल तक आते-आते नाट्यशास्त्र की यह परंपरा अनेक लोगों के लिए अपरिचित हो गई। जो पश्चिम की रंग परंपरा को देखने के आदी हो गए थे क्योंकि संस्कृत नाटकों की जो परंपरा अश्व घोष ईसा की प्रथम सदी से आरंभ होकर 20वीं शताब्दी तक कभी तेज तो कभी मंथर गति से चलती रही वह धीरे-धीरे शिथिल हो गई। इसी बीच मध्यकाल में 13वीं शताब्दी तक लोकनाट्य परंपरा (नौटंकी रास, रामलीला आदि) विकसित हुई। जो लोक जनजीवन से आस्था के माध्यम से गहरे जुड़ी तथा 18वीं शताब्दी तक आते-आते पारसी रंगमंच ने अपनी जड़ें जमा लीं। 19वीं शताब्दी में भारतेंदु के आगमन ने हिंदी रंगमंच को एक नई दिशा दी। यह समय इसलिए भी विशेष था कि सांस्कृतिक राजनीतिक साहित्यिक उथल-पुथल का प्रभाव नाटक कला पर भी पड़ा। भारतेंदु ने नाट्य लेखन और मंचन की जो आधुनिक युग में नींव रखी थी वह उनके अवसान से फिर शिथिल हो पड़ी। कई सालों के अंतराल के बाद नाटक लेखन में नया मोड़ देने के लिए प्रसाद का आगमन हुआ। जयशंकर प्रसाद ने प्राचीन संस्कृत नाटक शैली को नए अर्थों में अपनाया। 'भारतीय इतिहास के स्वर्ण युगीन पृष्ठों को नाटकों का उपजीव्य बनाने का अर्थ है कि उन्हें अपनी सांस्कृतिक विरासत पर गर्व था किंतु उनके रोमांटिक दृष्टिकोण ने उन्हें नई अर्थवत्ता में पिरोया, ठीक उसी तरह जिस तरह भारतीय पुनर्जागरण ने अपनी गौरवशाली सांस्कृतिक परंपरा को युग अनुरूप नया अर्थ दिया'। इस प्रकार नाट्य लेखन के क्षेत्र में तो नाटक को नई दिशा मिली, किंतु संस्कृत की गौरवशाली नाट्यशास्त्रीय परंपरा इस काल तक भुला दी गई। जिस प्रकार के नाटक आज खेले जा रहे हैं वह पश्चिमी रंगमंच के प्रभाव की देन है जो मध्यकालीन और मध्यवर्गीय चिंतन की उपज हैं। पारंपरिक रंग परंपरा आधुनिक रंगमंच में भले ही जीवित न हो पर वह परंपरा गांव में और शास्त्रीय नृत्य में जीवित है। कूडियट्टम, कथकली, यक्षगान, भरतनाट्यम आदि में प्रचलित है जो भारत की शास्त्रीय एवं लोक शैलियां हैं। आधुनिकता की दौड़ में सब कुछ शीघ्र पा लेने की अदम्य इच्छा रखने वालों के लिए यह परंपरा अजनबी है लेकिन जो पूरी तरह से समर्पित होकर इसमें रम गए हैं उन्होंने इस नाट्य शास्त्रीय परंपरा का न सिर्फ आधुनिक युग के साथ समावेश किया है बल्कि लोक परंपराओं के साथ इसे जोड़कर नवीन अर्थ भी प्रदान किए हैं। नाट्यशास्त्र के प्रणेता ने भी नाट्य शास्त्र की समाप्ति पर लिखा है-

'एवं नाटके प्रयोगे बहू-बहुविहितम कर्मशास्त्रम प्रणितम।
न प्रोक्त यच्च लोकादनुकृतिकरम् तच्च कार्यम् विधिज्ञे'॥

अर्थात नाट्यकर्मी लोक व्यवहार के आधार पर एवं नाना अनुभवों और प्रयोगों के आधार पर नाट्य का निर्माण कर सकते हैं।

****

संदर्भ-

संक्षिप्त नाट्य शास्त्र, डॉ राधावल्लभ त्रिपाठी
रंग मंच के सिद्धान्त, देवेंद्र राज अंकुर
भारतीय नाट्य परंपरा और अभिनयदर्पण, वाचस्पति गैरोला, संवर्तिका प्रकाशन,इलाहाबाद
हिन्दी नाटक, डॉ बच्चन सिंह